सराप

कबीर संजय

हिन्दी ADDA

सराप

'ई खुबई का मौत नै आवत'। गढ़ई के बगल की बँसवारी के पास से खूबचंद को आते हुए देख कर सबसे पहला ख्याल अम्मा के मन में यही आया।

'किसी की जिंदगी और मौत का भरोसा नहीं। जवान-जवान लोग मरे जा रहे हैं। रात में सोए तो सुबह नींद ही नहीं खुली। लेकिन, ई खुबइया तो जैसे अम्मरघड़िया पीके आया है। हाथ-पाँव भी सलामत है। एक जगह चैन से बैठा भी नहीं रहता मरभुक्खा।'

अम्मा ने अपना मुँह आँचल से ढक लिया और भुन-भुन करते हुए चापाकल के हत्थे को तेजी से ऊपर-नीचे करने लगी। पानी की कभी मोटी तो कभी पतली धार बाल्टी में गिरने लगी। इसके साथ ही अम्मा की भुनभुनाहट भी कभी तेज तो कभी धीमी होती जा रही थी।

अपने कद से छोटी एक लाठी को टेकते हुए, अपने शरीर को कभी पाँवों पर तो कभी लाठी पर सँभालते हुए खूबचंद नीम के पेड़ के छोटे से चबूतरे पर बैठ गए। नीम के पेड़ के थाले पर थोड़ी सी मिट्टी चढ़ा दी गई थी, जिससे वहाँ पर चबूतरे जैसी थोड़ी ऊँची जगह बन गई थी। चबूतरे पर कुछ ही देर पहले नीम पर चढ़ाए हुए जल का गीलापन बचा हुआ था। कंडैल के पीले फूल, थोड़ी सी रोली का रंग, चावल के दाने और एक लोटा जल। अपनी धोती गीली होने से बचाते हुए खुबई वहीं पर उकड़ू होकर बैठ गया। अपनी लाठी उसने एक तरफ रख दी। चश्मे की एक कमानी टूटी हुई थी। एक कमानी तो कान पर चढ़ जाती थी, जबकि दूसरी कमानी की जगह पर बँधे धागे को कान से लपेट कर चश्मे को नाक पर टिकाने की हिकमत की गई थी।

उसके चश्मे के शीशे मोटे-मोटे थे और उनके किनारों पर धूल जमा हो गई थी। कान से लपेटने वाले सूत के धागे भी मैल से काले हुए जा रहे थे। अपने चश्मे को उतारकर खुबई ने हाथ में ले लिया। पहले तो कुछ देर उसे हाथ में लेकर अपनी मिचमिची आँखों से देखता रहा। जैसे हाथों से उसका वजन तौल रहा हो। इसके बाद अपनी धोती के ही एक सिरे से उसने चश्मे पर जमी धूल साफ की। चश्मे को दोबारा अपनी नाक पर टिकाया। एक कमानी तो कान पर जाकर टिक गई। जबकि, दूसरी के सिरे पर लगे धागे को कान पर ले जाकर लपेट लिया। उसे हैडपंप का हत्था पकड़े और उसे ऊपर नीचे करती हुई विद्या की धुँधली आकृति दिखाई पड़ी।

खुबई ने वहीं से गुहार लगाई, राम-राम मलकिन।

अम्मा ने कोई जवाब नहीं दिया। उनके हाथ और तेजी से चापाकल के हत्थे को ऊपर-नीचे करने लगे।

खुबई ने फिर से अपनी तेज, तीखी और लड़खड़ाती हुई आवाज में गुहार लगाई, मलकिन हमार पैसवा मिलीगा का।

अम्मा ने अपना पूरा चेहरा बड़े से घूँघट में छिपा लिया। उसने अपना मुँह भी खुबई की तरफ घुमाकर नहीं देखा। नीम के पेड़ से पत्तियों के जत्थे के जत्थे गिर रहे थे। ऊपर अपनी शाख से लगी हुई पत्ती पीली होकर अपने हाथ छोड़ देती। शाख से अलग होते ही हवा उसे अपने साथ लेकर झुलाती हुई नीचे लाने लगती। गोल-गोल घूमती हुई पीली-पीली पत्तियाँ स्लोमोशन में जमीन पर उतरतीं। कई सारी पत्तियाँ एक साथ गिरतीं तो लगता जैसे नीम की पीली पत्तियों का कोई सामूहिक नृत्य सा चल रहा है। सभी एक दूसरे से समान दूरी बनाए हुए एक लय और ताल में नीचे गिरने का करतब दिखा रही हैं। हवा में गिरते-गिरते ही कभी-कभी कोई दो पत्तियाँ एक-दूसरे का हाथ पकड़ लेतीं और एक-दूसरे को अपनी बाँहों में समेटे हुए जमीन पर आ लगतीं। नीम के पेड़ की फुनगियों से गाँव में कुछ दूर पर चलते ईंट भट्टे की चिमनी से निकलने वाला धुआँ दिखाई पड़ रहा था। दूर कहीं खेत में चलते ट्यूबवेल की छोटी सी चिमनी पर रखा छोटा सा ढक्कन एक लय में उठता था और उसी लय में गिर जाता। पुक-पुक, पुक-पुक। पुक-पुक, पुक-पुक। क्षण भर के अंतर के बाद फिर से पुक-पुक, पुक-पुक। पूरे वातावरण की पृष्ठभूमि में यह पुक-पुक लगातार गूँज रही थी। नीम के पेड़ पर बैठी एक फाख्ता अपनी पुकार लगा रही थी। हूहू हू, हूहू हू। हूहू हू, हूहू हू। पहले, बहुत पहले जब कभी अच्छे दिन होते थे तो इसी फाख्ते के साथ अपनी धुन निकालते हुए अम्मा कहती, कूटूँ थी, पीसूँ थी। कूटने-पीसने वाले वो दिन तो जाने कब के चले गए। अभी तो इस खुबइया की आवाज इन सब पर भारी पड़ रही है।

अपनी आवाज पर किसी को कान नहीं देते देख खुबई ने गला खँखार कर साफ किया। अपना मुँह ऊपर कर एक बार भगवान की तरफ देखा। लेकिन, दिखी उसे नीम की मोटी और पतली डालियाँ ही। भगवान को अपना साक्षी बनाने के बाद गले से तेज-तेज आवाज निकाल कर वह सरापने लगा। यह रोने और गाने के बीच-बीच की आवाज थी। इसमें गाने की तरह के उतार-चढ़ाव भी पूरे थे। वर्षों के अभ्यास से इसका एक-एक शब्द खुबई को रट गया था। वह खुद ही इसका रचयिता था। इसके आरोह और अवरोह का भी उसे पूरा अभ्यास था। उसके श्राप की तेज आवाज पूरे गाँव में गूँजने सी लगी।

हे भगवान, हे गंगामाई, हे पीरबाबा

तुम न सबर कियो

हम तो सब सबर किया पर तुम न धीरज धरेव।

हम तो कुछ नै बोल पाए पर तुम न चुप रहेयो

हम तो कुछ नै देखित पर तुम न आँखिन बंद किहेयो

जे हमार किसमत लूटेस ओके तुम न माफ किहेयो

जेकरे चलते हमार बेटवा का ई हाल हुआ,

ओके भी हाल ऐसा ही होई जाए

जेकरे कारण हमार परवाह तबाह हुआ

ओकर भी परवार पर नाश टूटै

जेकरे चलते हमार पतीवा बिटिया के मुँह कटा

ओकरे भी शरीर के कण-कण से खून गिरै

जौन हमार पैसा लै के भाग गया

ओकरे सपनेओ में भी सुख नसीब न होए

श्राप-श्राप और श्राप की यह अटूट कड़ी थी। इसे खुबई रोज सुबह बालमुकुंद के दरवाजे पर आकर दोहराता था। उसकी आवाज में कभी-कभी दिल को चीर देने वाला रुदन समाने लगता। तो कभी आवाज में गायन ज्यादा हावी हो जाता। लेकिन, उसके दिल की पीड़ा से निकले हुए इस गीत की कई-कई पंक्तियाँ गाँव के बच्चों तक को याद हो गई थीं। कुछ औरतें भी जब एक-दूसरे से लड़ाई करती तो कभी-कभी खुबई के शब्दों में एक-दूसरे को कोसने-सरापने लगतीं। खुबई का श्राप पूरे गाँव के माहौल में रत्ती-रत्ती रचा-बसा हुआ था। कभी-कभी तो यह सुबह-सुबह गाँव में उठने वाली अन्य जरूरी आवाजों जैसी ही एक अन्य आवाज भी लगने लगता। यानी अगर कभी नागा हो जाए तो कमी खलने लगती थी कि कुछ ऐसा नहीं हो रहा है जो रोज होता है।

नीम के पेड़ की इस छाया के साथ ही मुकुट की खाट घूमती रहती है। अपनी खाट पर पड़े-पड़े वे नीम के पत्तों को झूलते हुए गिरते देखा करते हैं। कोई-कोई पत्ती तो एकदम तभी से उनकी नजर में आ जाती, जब वो अपने शाख से टूटती थी। धीरे-धीरे जमीन पर आती हुई। कभी-कभी वो गिरने वाली पत्तियों को गिनने की कोशिश भी करते। लेकिन, गिरती हुई किसी एक पत्ती पर यकायक उनकी निगाह टिक जाती। वो गिनती भूल जाते। अंतरिक्ष में बेवजह घूमती हुई पृथ्वी जब अपना चक्कर लगाते हुए जरा सा खिसक जाती और उनकी खाट पर सूरज की धूप पड़ने लगती तो वे किसी तरह अपने

हाथ-पाँव को सँभालते हुए खाट से नीचे उतरते। पहले तो अपनी निस्तेज आँखों से ओसारे की ओर देखते। किसी से सहायता की आस नहीं देख कर फिर वो खाट को खींच कर घिर्राने लगते। कभी खाट थोड़ा खिसकती तो कभी हिलने से भी इनकार कर देती। वो अपनी हाँफती साँसों को फिर से सँभालने की कोशिश करते और उसे दोबारा खींचने का प्रयास करने लगते। उनके कमजोर सूखे हाथों में कँपकँपी होने लगती। पाँव शरीर का वजन सँभालने से इनकार करने लगते। फिर पूरा जोर लगाने पर खाट कुछ इंच खिसक जाती। अपनी साँसों को सँभालते हुए वो इसी पर संतोष करने लगते। ये रोज का क्रम है। फिर उन्होंने खाट की दिशा बदलने की कोशिश की। खाट जिस तरह से बिछी हुई थी, उससे उनके चेहरे पर धूप आने लगी थी। पूरी कोशिश करने पर खाट थोड़ा सा घूम गई।

लेकिन, इतने में मुकुट को हँफनी का दौरा पड़ गया। सासें तेज-तेज चलने लगीं। पैर लड़खड़ाने लगे। हाथों में कँपकँपी होने लगी। अपने को जमीन पर गिरने से रोकने की कोशिश करते-करते वो खाट की ओरदावन की तरफ गिर पड़े। पीठ के बल खाट पर पड़े-पड़े उन्होंने किसी तरह से अपने पैरों को खाट के ऊपर किया। कुछ देर तक ऐसे ही पड़े रहे। धौंकनी की तरह चलती हुई साँसें धीरे-धीरे काबू आने लगीं। खाट के सिरहाने की तरफ अपना सिर करने की उनकी हिम्मत नहीं पड़ रही थी। किसी तरह से अपने पैरों से उन्होंने तकिया अपनी तरफ खींचा और उसे धीरे से उठाकर सिर के नीचे लगा लिया। ओरदावन की बाध उनकी पीठ पर चुभ रही थी। पूरे शरीर की ही खाल हड्डियों के ढाँचे पर चिपकी हुई थी। फिर पीठ पर बाध के निशान पड़ने लगे।

अपनी निस्तेज आँखों से उन्होंने खुबई की ओर देखा। खाट के घर्राने और साँसों की धौंकनी की आवाज खुबई ने भी सुनी थी। कुछ क्षण के लिए उसकी निगाह भी उस तरफ गई। लेकिन, अपने मोटे चश्मे के धुँधलाए शीशों से उसे कुछ खास नहीं दिखा। एक क्षण के लिए रुके उसके रुदन ने फिर पहले से बुलंद आवाज पकड़ ली।

जेकरे कारण हमार परवाह तबाह हुआ

ओकर भी परवार पर नाश टूटै

जेकरे चलते हमार पतीवा बिटिया के मुँह कटा

ओकरे भी शरीर के कण-कण से खून गिरै

जौन हमार पैसा लै के भाग गया

ओकरे सपनेओ में भी सुख नसीब न हो

अपनी निस्तेज आँखों से कुछ पल खुबई को देखते रहने के बाद मुकुट ने फिर से आँखें ऊपर कर लीं। नीम के पेड़ का मोटा सा तना। आगे जाकर मोटी-मोटी डालें। फिर उनसे निकलने वाली छोटी-छोटी शाखें। उन शाखों पर लगी हुईं छोटी-छोटी सींकियाँ। उन सींकियों पर लगी हुई छोटी-छोटी पत्तियाँ। एक सींक पर 11 पत्ती होती है कि नौ। नहीं शायद सात होती है। या फिर एक बार उन्होंने 13 पत्तियाँ गिनी थीं। एक ही सींक पर। दो-दो आमने-सामने और एक सींक के छोर पर। ढेर सारी पत्तियाँ, हवा चलने पर झूमने लगती थीं। बारिश हो तो पत्तियाँ खिल-खिल जातीं। लेकिन, अब इन पत्तियों के दिन पूरे हो गए थे। अपनी सींक से चिपकी वे पीली होती जा रही थी। उनमें जीवन रस कम होता जा रहा था। जीवन की हरियाली खोने लगी। मौत की पीली आभा अपने इर्द-गिर्द सबकुछ समेटने लगी। किसी दिन कोई पत्ती अपनी सींक का साथ छोड़ देती। हवा में लहराते और झूलते हुए वह नीचे गिरने लगती। बस अब जीवन इतना भर है। जितना सींक से छूटकर जमीन पर पहुँचने में समय लगता है। पूरी मस्ती और मौज के साथ हवा में लहराती, झूलती और गोते लगाती पत्तियों को देखते हुए मुकुट को लगता कि किसी बहुत ऊँचे पहाड़ पर, हाँ बहुत ऊँचे पहाड़ की चोटी पर काश की वो भी चढ़ पाते। वहाँ से, जहाँ सिर पर आसमान छूता हुआ लगता और नीचे जमीन पाताल में कहीं जमी हुई दिखती। वहाँ पहाड़ों के बीच कहीं एक हरी सी नदी बहती होती। सूरज की रोशनी में उसका पानी चाँदी की तरह चमकता होता। वहीं से वे भी अपने दोनों हाथों को हवा में उठाकर पत्तियों की तरह ही पहाड़ से अपने को नीचे गिरा देते। नहीं-नहीं ऊपर से खुद को नीचे की तरफ छोड़ भर देते। हवा में झूलते, लहराते और गोते खाता हुआ उनका भी शरीर नीचे आता। पत्तियों की तरह ही उनका शरीर धूल में लथपथ पड़ा होता। आत्मा बीच रास्ते में ही हवा में गोते लगाती हुई वापस हो जाती। 'अच्छा मुकुट, बस इतना ही साथ रहा तुमसे।'

कुछ ऐसा ही सोचते हुए एक पत्ती पर मुकुट की निगाह जम गई। थोड़ी सी देर में वह अपने शाख से टूटकर नीचे गिरने लगी। 'हाँ, बिलकुल ऐसे ही काश की मैं भी हवा में झूलता, गोते लगाता हुआ।'

इन पत्तियों को बटोरकर एक किनारे इनका ढेर लगा दिया जाएगा। शाम के समय इनमें आग लगाई जाएगी। धीरे-धीरे सुलगती नीम की पत्तियों का धुआँ पूरे गाँव में फैल जाएगा। मच्छरों की आँख में नीम के धुएँ के कसैले कण चुभने लगेंगे। नीम का धुआँ देखते ही वे भाग जाएँगे। गाय-भैंस के पास नीम की पत्तियाँ सुलगा दी जाएँगी। शाम के समय खून पीने वाली मक्खियाँ यानी डाँछ भैंस की मोटी काली चमड़ी पर भी

काट-काटकर घाव बना देती है। भैंस अपने मुँह को बार-बार झौंकार कर उन्हें उड़ाने की कोशिश करती। तो कभी अपनी पूँछ को सोंटे की तरह चलाकर उन्हें भगाती। लेकिन, डाँछ बार-बार उड़कर पीठ पर बैठ जाती और चमड़ी को अपने छोटे चूसकों से खोद डालतीं। नीम का धुआँ डाँछ को भी गड़ने लगता। उसके लिए भी वहाँ पर टिकना मुश्किल जाता है। हाँ, इसी तरह, बिलकुल इसी तरह से सुलगा दी जाती हैं नीम की पत्तियाँ। और उसे भी सुलगा दिया जाए, अगर वह भी गिर सके किसी ऊँचे से पहाड़ से, झूलता, डोलता और गोते खाता।

खाट पर लेटे-लेटे मुकुट सोचते रहे। जीवन जैसे धीरे-धीरे उनके हाथों से फिसल रहा था। वो उसे जितनी भी जोर से पकड़ने की कोशिश करते, जीवन जैसे जान छुड़ाकर उनसे उतना ही दूर भागने की कोशिश करने लगता। दिन भर चारपाई पर लेटे-लेटे वो अपनी जिंदगी का हिसाब-किताब करते। बहीखाता दुरुस्त करने की कोशिश करते। खेतों और बागीचों के बीच बसे हुए छोटे-छोटे गाँव, घर-मकानों के झुंड की तरह एक साथ खड़े हुए थे। छोटी-छोटी पगडंडियाँ इन्हें आपस में जोड़े हुए थी। जातियों के आधार पर बसे इन मोहल्लों के नाम भी अपनी जातीय पहचान पर ही आधारित थे। थोड़ी-थोड़ी दूरी पर बसा हुआ बभनान, ठकुरान, अहिरान, चमरौटी जैसे मोहल्ले। टोलों को जोड़ने वाली इन्हीं पगडंडियों पर भागते हुए बबलू अपने हाथों में पकड़ी हुई फिरकी घुमाते थे। आम की पत्ती को दो तरफ से आधा-आधा काटकर उसके बीच नीम की सींक घुसेड़कर बनाई गई यह फिरकी दौड़ने की रफ्तार के साथ ही तेज-तेज घूमने लगती। रुकने के साथ ही रुक जाती। मुकुट अपने साथ के बच्चों के साथ तेज और तेज भागते, फिरकी तेज और तेज घूमने लगती। कभी तेज हवा चल रही हो तो उसके सामने भी फिरकी तेजी से घूमने लगती है। गाँव की पगडंडियों पर भागते-भागते ही मुकुट किसी आम के पेड़ पर चढ़ जाते। फिर वहाँ से सबसे अच्छी पत्ती की तलाश करके उसे तोड़ लाते। उससे खूब अच्छी सी फिरकी बनाई जाती। हवा न चल रही हो तो मुकुट अपने मुँह से फिरकी में फूँक मारते। फिरकी तेज-तेज घूमने लगती। अपने फेफड़ों में ढेर सारी हवा भरकर वे और तेज फूँक मारते तो फिरकी और तेज घूमने लगती। कभी-कभी तो फूँक मारकर फिरकी घुमाने की प्रतियोगिता भी चलने लगती। हाथ आजमाने वाले तो बहुत थे लेकिन इसमें जीत हमेशा मुकुट की ही होती थी।

लेकिन, जीवन के हिसाब-किताब में तो अब तक इस फिरकी का मोल बहुत ही कम आँका जा चुका था। इसके लिए शायद ही कोई कीमत चुकाई जाती। ट्रेन तेजी से भागती रहती तो मुकुट खिड़की की सीट पर बैठने की जिद करते। रास्ते में लिखे हुए हर बोर्ड को पढ़ने की कोशिश करते। एक-एक अक्षर जोड़कर शब्द पूरा करते कि पूरी

ट्रेन तेजी से भागते हुए आगे निकल जाती। बाद में उनके हाथ सिर्फ उन अक्षरों के कुछ चित्र ही रह जाते। उसे ही जोड़-जोड़कर वो शब्द पूरा करते। ऐसे ही जोड़-जोड़कर वो रटते। बाबासिर। बाबासिर। तभी ट्रेन और तेजी से भागती और खिड़की से उनकी निगाह हटने लगती। दूर-दूर तक खेतों के सिलसिले शुरू हो जाते। लेकिन, थोड़ी ही देर में रेलवे की पटरियों से थोड़ी दूर पर, पटरियों के साथ-साथ भागती हुई एक और दीवार आ जाती। पूरी दीवार को काले रंग से पोतकर उसके ऊपर सफेद रंग से लिखा हुआ है। बवासीर। भगंदर। फिश्चुला। इन शब्दों को मिलाकर कोई अर्थ निकालना मुकुट के लिए उस समय संभव नहीं था। लेकिन, जैसे-जैसे वे बड़े होते गए इन शब्दों को उन्होंने पढ़ना सीख लिया। बवासीर। भगंदर। फिश्चुला का शर्तिया इलाज। कहीं-कहीं तो इसकी गंभीरता और ज्यादा बताने के लिए 'खूनी बवासीर का पक्का इलाज' लिखा होता। मर्दाना कमजोरी। धातु रोग। पतलापन। टेढ़ापन। इन सारे विज्ञापनों को उन्होंने उम्र बढ़ने के साथ ही पढ़ना सीख लिया। पर सही मायनों में इनका अर्थ कभी उनके सामने इस तरह खुला नहीं था।

तीन-चार साल पहले शायद उन्हें पहली बार बवासीर का अहसास हुआ। अपने पीछे। मलद्वार पर उन्हें तेज दर्द का अहसास होता। मल के साथ रिस-रिसकर खून भी बाहर आने लगा। उन्हें लगता जैसे कि खून की कई छोटी-छोटी गाँठें वहाँ पर बन गई हैं। वो गाँठें कभी खून बनकर रिसने लगतीं। कभी उनमें से खून रिसने लगता। कभी बैठने पर गाँठें चुभने लगती। कभी हाथ से थोड़ा प्रयास करने पर गाँठें अंदर भी चली जातीं। लेकिन, गाँठें फिर बाहर आ जाती। और उसमें से खून रिसता रहता। कई बार तो उनकी पैंट पर भी पीछे खून के गहरे-गहरे दाग दिखाई पड़ने लगते। ऐसी हालत में वे शर्मिंदगी में अपनी पैंट को ही किसी तरह से ढकने की कोशिश करते रहते।

उनके अंदर का खून धीरे-धीरे करके रिस रहा था। इसी के साथ जीवन भी जैसे धीरे-धीरे समाप्त हो रहा था। जैसे खुले में रखा हुआ पेट्रोल उड़ जाता है। जैसे बर्फ की बड़ी-बड़ी सिल्लियाँ भी धीरे-धीरे पिघल जाती हैं। जैसे उसका पानी भी धीरे-धीरे सूख जाता है। उड़ जाता है। विलीन हो जाता है। हवा में। इसी वातावरण में। इसी धूल और मिट्टी में। सब कुछ घुल-मिल जाता है। खतम हो जाता है। मिट जाता है। उसी में बना रहता है। अपना रूप खो देता है। ऐसे ही धीरे-धीरे मुकुट के अंदर का जीवन भी बवासीर की गाँठों से धीरे-धीरे पिघल रहा था। शरीर उनका ठठरी हो गया। आँखें कोटरों में धँस चुकी थीं। बाल उनके लगभग उड़ चुके थे। दोनों हाथ पतली-पतली उँगलियों पर मढ़ी गई चमड़ी जैसे हो गए थे। इन पर नसों के उभार भी डूबे हुए थे।

मुकुट के गले की हर कोई तारीफ करता था। वो गाते बहुत अच्छा थे। गाँव में रामलीला होती तो हर तरफ उनके जलवे बिखरे रहते। सबसे ज्यादा प्रशंसा पाने वाले उद्घोषक वही तो थे। लेकिन उनका वही गला अब सूख चुका था। उसमें से आवाज भी बहुत धीरे निकलती। गले के आगे एक गाँठ सी उभरी हुई दिखाई पड़ती। कंधों की, छाती की हड्डियों को भी त्वचा की एक पतली परत ने ढका हुआ था। चलते समय पैर काँपते। शरीर में जैसे माँसपेशियाँ बची ही न हों। कमर में पैंट को थामे रहने की भी शक्ति नहीं थी। वो अपनी पैंट के हुक को आगे एक बक्कल में फँसा कर रखते। या फिर दोनों हाथों से अपनी पैंट पकड़े रहते। पैंट इतनी ढीली हो चुकी थी कि किसी भी पल उसके खिसककर गिरने का खतरा रहता। अपनी डूबती हुई आँखों से वो अपने आस-पास घटने वाली हर चीज पर निगाह डालते रहते।

कभी इसी में कुछ-कुछ बेहोशी जैसी नींद आ जाती। तो कभी पेड़ों की फुनगियों पर निगाह टिकाए-टिकाए आँख झपकने लगती। जिंदगी में मुसीबतों ने कुछ इस तरह से पीछा किया था कि हर परेशानी को काटने में जिंदगी का एक हिस्सा खप गया। जमीन बिक गई। अम्मा की पेंशन गिरवी रख देनी पड़ी। जेब में बची हुई आखिरी रेजगारी भी इस बीमारी ने छीन ली। अब पूरी जेब खाली थी। अपनी ढीली-ढाली सी जेब में मुकुट एक पर्स रखते थे। इसमें कई तरह के विजिटिंग कार्ड थे। रसीदे थीं। कभी कुछ खरीदा था। कभी बैंक में पैसा जमा किया था। सारी रसीदें यहाँ पर सुरक्षित थीं। एटीएम कार्ड से निकले हुए स्टेटमेंट। रास्ते में आते-जाते किसी का पकड़ाया हुआ हैंडबिल। सब कुछ तुड़ा-मुड़ा सा यहाँ पर पड़ा हुआ था। लेटे-लेटे जब कभी चेतना जोर मारती तो मुकुट अपनी जेब से पर्स निकाल लेते। इनमें से एक-एक कर सभी विजिटिंग कार्ड को निकालते। उन्हें ध्यान से देखते। एक तरफ रखते जाते। शनि कंप्यूटर्स। इलाहाबाद इलेक्ट्रिकल्स। द ग्रेट फोटोवाला। बीमा एजेंट। एचडीएफसी बैंक एक्जीक्यूटिव मैनेजर। यहाँ तक कि एक्वाग्राड आरओ लगाने वाली कंपनी के एजेंट तक का विजिटिंग कार्ड यहाँ पर मौजूद था।

मुकुट इन सभी को एक-एक कर पढ़ते। सपनों की तरह याद करने की कोशिश करते कि यह कार्ड उनको कब और कहाँ मिला था। वही उनकी खुशी का बहुत बड़ा दिन था, जब किसी बैंक के एजेंट ने उन्हें इस काबिल समझा था कि अपना कार्ड पकड़ा सके। कि मुकुट उससे कोई पॉलिसी ले सकते हैं। कि मुकुट कंप्यूटर की खरीद में भी दिलचस्पी ले सकते हैं। यहाँ तक कि आरओ की कंपनी का एजेंट भी उन्हें अपना संभावित खरीददार मानता था। इसके बाद मुकुट एक-एक रसीद को पर्स से निकालने लगते। तीन साल पहले कभी इलाहाबाद से स्पोर्ट्स

शूज खरीदे थे। उसकी रसीद। कभी रजिस्टर डाक से कुछ पोस्ट किया था, उसकी रसीद। कभी एक बार कपड़े ड्राईक्लीन करने के लिए दिए थे। उसकी रसीद। हर रसीद उनके लिए खुशी का एक पल है। उन रसीदों पर हाथ फेरते हुए वे मानो उसी समय में लौट जाते। जब उन रसीदों को हासिल करने की कूवत उनमें थी। वो हरे-हरे, पीले-पीले नोट। जिनसे खुशियाँ खरीदी जाती है। जरूरतें खरीदी जाती हैं। समय खरीदा जाता है। लेकिन, अब उनका पर्स खाली है। इसमें एक छोटा सा सिक्का भी नहीं है।

कभी अम्मा तो कभी कपिल उनके लिए गाँव के ही डॉक्टर से दवा ले आते हैं। सुबह गरम पानी से खाओ। रात में सोते समय खाओ। ईसबगोल की भूसी। हरे पत्ते का साग। दही। अब दही कहाँ से मिलती। हाँ, मट्ठा जरूर कभी-कभी मिल जाता। उनके लिए सबसे ज्यादा बनने वाला भोज्य खिचड़ी। पर खून रिसने की बीमारी ठीक नहीं हुई। हर समय एक टीस सी उठती रहती। लाल-लाल खून निकलता रहता। कभी-कभी मवाद जैसी शकल में तो कभी-कभी ठेठ खून के लाल रंग में। जैसे पेड़ से पत्ते झड़ जाते हैं वैसे ही उनके अंदर से जीवन झर रहा था। यहाँ अब नए पत्ते आने की गुंजाइश भी नहीं थी।

पर्स के एक कोने में दवाओं का एक पर्चा था। नाम वाले कॉलम में चिंता लिखा हुआ था। उम्र 29 साल। चिंता उनकी पहली पत्नी थी। छोटी सी उम्र में चिनियावाली बीमारी यानी डायबिटीज से उसका शरीर गल गया। इसी में कहीं ट्रेन का एक टिकट था। कई साल पुराना। बनारस का। बनारस, जहाँ गोदौलिया में सोना रहती थी। वही सोना कहती थी कि सोना हूँ मैं और सोने के अलावा वो कुछ भी नहीं पहनती। चिंता की मौत के बाद उनकी शादी सोना से हुई थी। लेकिन वो उनके साथ रह नहीं पाई। हालात ने ऐसे करवट बदले कि वो मायके चली गई। शादी टूट गई। पता नहीं किस झक में और कब उन्होंने बनारस का एक टिकट खरीदा था। प्लेटफार्म पर घंटों बैठे रहे। बनारस के लिए कई गाड़ियाँ आईं और चली भी गईं। लेकिन मुकुट किसी एक ट्रेन में बैठने का फैसला ही नहीं कर पाए। सोचते रहे। दरवाजा खुलेगा तो सोना पहचानेगी उन्हें। वो जाकर कहेंगे भी क्या, सोना से। अब तो सुना है कि वो तो अपने जीजा के साथ बैठ गई है। मन के कहीं किसी कोने से आवाज उठती, अपनी बेटी से मिलने की माँग तो वे कर ही सकते हैं। पर जिस बेटी ने कभी उनका मुँह नहीं देखा, वो अब उन्हें देख क्या अपनापन महसूस करेगी।

बाद में पार्वती से उनकी शादी हो गई। पर अब वो भी मुकुट साथ नहीं थी। पार्वती जब अपने घर गई थी, उस समय उसके पेट में मौजूद गर्भ की उम्र तीन महीने के लगभग थी। एक बार जाने के बाद वह वापस नहीं लौटी। कभी अम्मा ने मुकुट का हाल

भिजवाया भी तो वहाँ से पता चला कि गर्भावस्था के चलते पार्वती खुद भी कुछ करने से लाचार होती जा रही है। मायके में तो माँ और भाभी उसकी सेवा करने को हैं। वहाँ कौन पड़ा। आदमी बीमार और खाने के भी लाले। इस ताने के बाद फिर अम्मा कुछ भी खबर वहाँ दोबारा न भिजवा सकी।

मुकुट ने अपनी उँगलियों पर जोड़ लगाया। पेट का बच्चा अब आठ महीने से ज्यादा का हो चुका होगा। क्या पता कब उसकी पैदाइश हो। एकाध बार मुकुट ने फोन पर बात करने की कोशिश जरूर की। पर उधर से पहले तो फोन उठा नहीं। उठा भी तो किसी ने पार्वती से बात नहीं कराई। फोन पार्वती के पिताजी के पास था। अभी यहाँ कहाँ है। तो अभी कहीं गई है। कुछ इसी तरह से बहानों से बात टाल दी गई। मुकुट मन मसोस कर रह जाते। पता नहीं क्या होगा। बच्चे की शकल देखने को भी मिलेगी या नहीं। पार्वती लौटेगी। दोबारा इसी आँगन के एक कोने में साड़ी का आँचल सिर पर रखे उसकी सूरत दिखाई पड़ेगी या नहीं। इस सबकी सोच से मुकुट को लेटे-लेटे ही गश आ गया। मूर्छा में वे कुछ सच्चे और कुछ झूठे सपनों में गुम हो गए। कहीं तो 13 साल तक गायब रहने के बाद अचानक पिताजी लौट आए हैं। तो कहीं पिताजी अचानक फिर पता नहीं कहाँ चले गए हैं। पिताजी के आने और चले जाने के बीच कभी किस्मत मेहरबान हो जाती है तो कभी इस कदर रूठ जाती है जैसे कि कभी उसने इनका मुँह ही न देखा हो। इन सच्चे-झूठे किस्सों ने उन्हें फिर से बेचैन कर दिया। मूर्छा टूट गई।

अपनी पीली और जीवन से खाली हो चुकी आँखों को उन्होंने पेड़ की फुनगियों पर केंद्रित करने की कोशिश की। फिर चेहरा थोड़ा सा घुमा लिया। खुबई का रुदन सप्तम पर पहुँचने लगा था। जोर-जोर से वह नियति से अपनी नाइनसाफियों का बदला लेने की दुहाई दे रहा था। नियति से किसी का बुरा कर देने की इन गुजारिशों को सुनने का हर कोई आदी हो चुका था। यह कोई पहली बार नहीं हो रहा था। लगभग पंद्रह साल से खुबई रोज इसी तरह से आकर इस नीम के पेड़ के नीचे बैठता है। इसी तरह से रोता है, ऐसे ही गाता है। उसकी आवाज कभी ऊँची हो जाती है और कभी नीची रह जाती है। पंडिताने में आकर उसके इस तरह के कोसने पर पहले लोगों की आँखें लाल हो जाती थीं। कोई उसे मार भी बैठता था। कोई उसे धकिया कर भगा देता था। पर धीरे-धीरे उसका रुदन नीम के तने का एक जरूरी हिस्सा बन गया। गाँव के लोगों को भी उसे देखने की आदत हो गई। उसकी आवाज का कानों को अभ्यास हो गया था। सुबह के समय खुबई आकर वहीं पर बैठ जाता। जी भर के पंडित बालमुकुंद को कोसता। यहाँ तक कि उनके शरीर में, उनके पूरे परिवार के शरीरों में, उनके पूरे खानदान के शरीरों में कीड़े पड़ने की बद्दुआएँ करता। फिर रोते-रोते जब थक जाता तो खुद ही किसी

तरह से उठकर वहाँ से चला जाता। या फिर घर से कोई बुलाने आ जाता। कई बार तो कोसते-कोसते उसकी हालत खराब हो जाती। आवाज फटने सी लगती। खाँसी के दौरे पड़ते। घर के लोग बुलाने आते लेकिन वह जाने से इनकार कर देता। इस बुढ़ापे की हालत में उसे किसी तरह से घर वाले वापस ले जाते। कई बार तो टाँग कर ले जाना पड़ता। लेकिन, अगले दिन सुबह फिर वह चला आता और नीम के उसी पेड़ के नीचे बैठ जाता।

मुकुट ने अपनी निस्तेज डूबती सी आँखों से खुबई को देखा। खुबई का ध्यान कहीं नहीं था। अपने मोटे से चश्में से आँखें मिचमिचाते हुए वह अपने कोसने वाले रुदन में लगा हुआ था। मुकुट को खुबई की उस पहली स्मृति की याद हो आई जो अभी भी उसकी दिमाग में कहीं बची रह गई है। ये कोई 25-30 साल पहले की बात रही होगी। ये नीम का पेड़ तब इतना घना नहीं था। लेकिन, पेड़ ने अपनी बुलंदी पानी शुरू कर दी थी।

मुकुट गाँव में शायद पहले बच्चे थे जिसका जन्म दिन मनाया जाता था। उस दिन मुकुट का दसवाँ जनमदिन था। घर में गुलगुला बन रहा था। उसके बाद कड़ाहा चढ़ने वाला था। कद्दू और पूड़ी की सब्जी बननी थी। पूरा परिवार एक साथ खाने वाला था। बालमुकुंद की दालान में कुछ-कुछ खुशियों भरा माहौल था। बालमुकुंद रेलवे में कंपाउंडर की नौकरी पर थे। अक्सर तो वे गाँव से बाहर रहते। लेकिन, जब गाँव आते तो उनका रुतबा देखने लायक रहता। लंबा-चौड़ा गोरा शरीर। बालों को जरा सा घुमाव देकर वे कंघी करते थे। ऊपरी होंठों के ऊपर बनी हुई मूँछों की एक बारीक रेखा। एकदम राजकपूर वाली स्टाइल की। गाँव में भी बिना इस्तरी कराए और बिना कलफ लगे कपड़े वे नहीं पहनते थे।

बालमुकुंद जब गाँव आते तो खुबई उनसे मिलने जरूर आते। उस दिन बालमुकुंद की खाट से दस कदम की दूरी लेकर इसी नीम के पेड़ के नीचे खुबई बैठ गए।

कैसे हो खुबई। बालमुकुंद अपनी गूँजती हुई सी आवाज में पूछते।

ठीक हूँ मालिक। खुबई हाथ जोड़कर जवाब देते।

काम कैसा चल रहा है।

बस, गुजारा होइ रहा है मालिक।

अभिवादन और औपचारिकता के बाद खुबई ने महेश से अपने मन की अरदास की।

मालिक, रामजोर की उमर होई रही है। कक्षा पाँच तक पढ़े हैं। कहीं अगर कुछ लग जाता तो हम लोगों का भी जनम सुधर जाता। साहेब, अगर कहीं से भी थोड़ी मेहरबानी हो जाती।

खुबई अपने बड़े लड़के की नौकरी रेलवे में लगाना चाहते थे। बालमुकुंद से वे पहले भी इशारों-इशारों में कई बार इसकी गुजारिश कर चुके थे। उस दिन उन्होंने इसके लिए साफ-साफ कहा। नौकरी मिलना कितना कठिन है और ऊपर के अधिकारी कितने निष्ठुर इसका पूरा किस्सा सुनाने के बाद बालमुकुंद ने उन्हें नौकरी के लिए पैसा लगने की बात कही।

खुबई को 15 हजार रुपये इकट्ठा करने की बात बाल मुकुंद ने कही। जिस रोज की स्मृति मुकुट के मन में आज भी जिंदा है, उसी रोज खुबई ने बालमुकुंद को पैसे दिए थे। सुबह से आकर नीम के पेड़ के नीचे जम गया खुबई काफी देर तक पेड़ पर बैठने वाले कौव्वे हड़ाता रहा। कभी वो किसी एक डाल पर बैठे कौव्वे की तरफ जाकर तेजी से चिल्लाता हड़ा-अआ। तो कभी दूसरी डाल पर। खुबई के शरीर में जैसे कोई बिजली सी भर गई हो। खजूर के पत्तों से झाड़ू उठाकर उसने पूरा आँगन साफ कर दिया। पेड़ों के थाले बनाने लगा। काला रंग, मझोला कद और हल्के से घुँघराले बाल। खुबई की नाक थोड़ा मोटी सी लगती। जैसे किसी ने एक बड़ा सा बेडौल पकौड़ा रख दिया हो। उसी अनुसार उसके नथुने भी सामान्य से थोड़ा बड़े लगते। जब वो काम करता तो उसमें से ढेर सारी हवा बाहर निकलते हुए दिखती। मजबूत हाथ-पैर वाला वो एक अच्छा कमेरा माना जाता था। मुकुट भी कुछ देर तक उसे देखते रहे थे। बाद में वो बालमुकुंद को पैसे देकर चला गया।

लेकिन, रामजोर की नौकरी नहीं लगी। बालमुकुंद जब भी गाँव आते वो उनसे नौकरी की बाबत पूछता। 'कह दिया है, जल्दी ही कुछ हो जाएगा।' इस तरह के वाक्य बालमुकुंद से सुनने को मिलते। जब बालमुकुंद घर पर नहीं होते तो वह गाँव कब आने वाले हैं, इसी की बात पूछने नीम के पेड़ के नीचे बैठा रहता। लेकिन, रामजोर को नौकरी नहीं मिली। पैसे भी वापस नहीं मिले। कभी मालिक कब आएँगे और कभी मेरे पैसे वापस कब मिलेंगे, यही ओरहाना लेकर वह नीम के पेड़ के नीचे सुबह से आकर बैठ जाता। उसके ओरहाने की आवाज कब रुदन और कोसने में बदल गई, यह ठीक-ठीक कहना मुश्किल है।

पंद्रह हजार रुपये का यह घाव खुबई पर इतना भारी था कि वह उसकी चोट से उबर नहीं पाया। उसे अपनी जिंदगी की सारी मुसीबतों का सिरा इसी 15 हजार में दिखाई

पड़ता। खुबई सन की रस्सी बटने का काम करते थे। गाँव में किसी का खेत वह किराए पर लेते। उसमें सन बोते। खेतों की मेढ़ भी खाली हो तो सन के पौधे लगा देते। सन के पौधे जब बड़े हो जाते तो उन्हें जड़ों के थोड़ा ऊपर से काटकर उनका गट्ठर बनाकर गढ़ई के पानी में डुबो देते। सन के तने सड़ते रहते। गट्ठर पानी से बाहर न उतराने लगे इसके लिए कई बार उन्हें गढ़ई के तले में थोड़ा मिट्टी डालकर दबा देते। सन के तनों के ऊपर की सख्त त्वचा सड़ जाती और उसके नीचे से रेशे-रेशे जैसे निकल आते। गढ़ई के पानी में खुबई इन्हें देर तक हिलाता रहता। तने की सड़ी हुई त्वचा के छोटे-छोटे टुकड़े कुछ ही देर में पूरी तरह से छँट जाते और लंबे-लंबे रेशे बाहर निकल आते। इन्हीं को बाहर निकालकर सुखा कर वह रस्सी बना कर बेचते थे। इसके अलावा वह अरहर के रैंठे से टोकरी बनाने का काम करते थे। सन की रस्सी और रैंठें से बनी टोकरी को बेचकर ही उसका जीवन चल रहा था।

खुबई लोगों के घरों की खपरैल छाने का भी काम करते थे। आँधी-पानी में छत की खपरैल इधर-उधर हो जाती। बंदर अगर गाँव में आ गए तो खपरैल टूट जाती। बंदरों के बच्चे खपरैल उसुक देते। बरसात के समय इनमें से पानी चूने लगता। गरमियों के मौसम में यहाँ से सूरज झाँकने लगता और सर्दियों में बर्फीली हवाएँ यहीं से घुसती। खासतौर पर बरसात के पहले लोग अपने खपरैलों को चाक-चौबंद बना लेते। खुबई इस काम में भी खासे याद किए जाते थे। सारे खपरैलों को एक-एक कर बाहर निकालकर वे उसे करीने से रख देते। खपच्चियाँ अगर कहीं से टूट रहीं हों या उन पर लगा हुआ बाध सड़ रहा हो तो उसे ठीक करते। फिर सारे खपरैलों को सँवारकर खपच्चियों के ढाँचे पर इस तरह बिछा देते कि बरसात का सारा पानी उन्हीं नालियों से बहकर नीचे आ जाए और उसकी एक बूँद भी घर के अंदर न टपके। गाँव-घर के लोगों के भी छोटे-मोटे काम वह कर देते थे। इसके बदले तीज-त्योहार पर भी उन्हें कुछ न कुछ मिल जाता।

खुबई के तीन लड़के थे। सबसे बड़े लड़के रामजोर को नौकरी दिलाने के लिए उन्होंने कुछ तो गहने-जेवर बेचे और कुछ पैसे बगल के गाँव के लाला रामनिवास से लिए थे। नौकरी मिलते ही पैसे वापस देने का वायदा था। इसपे ब्याज भी चढ़ रहा था। लेकिन, रामजोर को नौकरी नहीं मिली। खाने-कमाने वाली आमदनी में लाला रामनिवास का कर्जा कैसे चुकाते। रामनिवास के मित्र अवध नारायण इलाहाबाद शहर में दारोगा थे। घर में काम करने के लिए उन्हें कोई लड़का चाहिए था। कर्ज और ब्याज नहीं चुकाने के एवज में खुबई के दूसरे बेटे भूसी को दारोगा के यहाँ खाने और कपड़े के वेतन पर नौकरी करनी पड़ी। यह एक तरह से बंधुआ मजदूरी थी। लगभग दो साल तक भूसी

उनके यहाँ काम करके अपने बाप का कर्ज चुकता करता रहा। काम में कोई गलती हो जाने पर दारोगा जी का रौद्र रूप घर में दिखाई देने लगता। कभी अपनी बेल्ट से पीटते तो कभी तलवों को बेंत से गरम कर देते। रोता, कलपता और अपनी चोट सहलाता भूसी जब 14 साल का हुआ तो दारोगा जी के घर से भाग निकला। लेकिन, वह लौटकर अपने गाँव भी नहीं आया। भूसी कहाँ गया, तब से ही उसका कोई पता नहीं।

भूसी के भागने से खुंदक खाए दारोगा जी लाला रामनिवास के घर का चक्कर काटते। खुबई को जोर-जोर से गालियाँ बकते। 'कहाँ छुपा रखा है साले। पाताल से भी ढूँढ़ निकालूँगा।' लाला रामनिवास ने अपना पैसा तुरंत वापस करने की माँग करनी शुरू कर दी। मजबूरी में भूसी के भागने के बाद उसकी जगह पर खुबई के तीसरे बेटे भुल्ली को दारोगा जी की नौकरी करनी पड़ी। बड़े भाई पर आया गुस्सा भुल्ली उतारा गया। 11 साल के भुल्ली के हाथों पर बेंत की चोट से फफोले पड़ जाते। पींठ पर काले निशान उभर आते। जब भी खुबई उससे मिलने जाते। खुबई को देखकर ही भुल्ली जोर-जोर से रोने लगता। वापस लौटने लगते तो जोर से हाथ पकड़ लेता। छोड़ता ही नहीं। 'बाबा, हमउ घर चलबै। बाबा, हमउ घर चलबै।' हाथ पकड़कर बस यही रटने लगता।

खुबई मनमसोस कर रह जाते। आँखें गीली हो जातीं। एक बार दारोगा जी से मरी हुई आवाज में कहते, 'बाबू साहब, आप कहें तो दुई दिन के लिए लिवा ले जाएँ। फिर पहुँचा देंगे।'

दारोगा जी की गुस्सैल आवाज सुनाई पड़ी, 'देखो ई सब नाटक न करो हियाँ। काम कऊन करेगा। काम के बरे जब आया है तो काम तो करेगा ही न। होली-दिवाली हो तो भेज भी दें।'

दारोगा जी की गुर्राती हुई आवाज से खुबई के हौसले पस्त हो जाते। अपना मुँह लटकाकर वह चुपचाप वापस आ जाते। भुल्ली फिर भी हाथ न छोड़ता। 'बाबा, हमउ घर चलबै।' खुबई उसे बताते कि 'बस अभी रुको शहर में एक काम करके आ रहे हैं। फिर लौट के ले जाएँगे।'

शाम हो गई। अँधेरा घिरने लगा लेकिन बाबा लौट कर नहीं आए। भुल्ली की नजरें बाहर ही टिकी हुई थीं। रात की ड्यूटी की तैयारी में दारोगा जी शाम को ही कुर्सी पर बैठे-बैठे ऊँघ रहे थे। भुल्ली चुपचाप बाहर निकल गया। गाँव की तरफ जाने के लिए टैंपो कहाँ से मिलती है, इसका रास्ता उसे कुछ-कुछ याद था। शाम के धुंधलके में वो शहर की भीड़-भाड़ से बचता-बचाता सिविल लाइंस पहुँच गया। लेकिन, तब तक रात हो चुकी थी। एक लड़के के भाग जाने के बाद से दारोगा जी पहले से ही सावधान थे।

उन्होंने अपने मातहतों को संदेश दिया तो कुछ ही घंटों में भुल्ली को बस अड्डे से पकड़कर दारोगा जी के हवाले कर दिया गया।

इसके बाद क्या हुआ। इसके बारे में कोई कुछ कहता है तो कोई कुछ। यथार्थ और कल्पना, असल और नकल यहाँ पर एक-दूसरे में घुल-मिल गई है। दबी जबान से कुछ लोग बताते हैं कि अपने बाबा के पीछे-पीछे भागने की कीमत भुल्ली को चुकानी पड़ी। दारोगा जी को आदमी सीधा करने के बहुत सारे तरीके आते थे। कितना भी चुप्पा आदमी हो, कितना भी घाघ, चालाक, मक्कार। चोर हो या डकैत। एक बार अगर दारोगा जी की पकड़ में आ गया तो फिरकी की तरह नाचने लगता था। लाठी-डंडे, बेल्ट, बिजली की तारों से बने हंटर के आदमी के शरीर पर तमाम तरह से प्रयोग की कई अलग-अलग विधियाँ उन्होंने ईजाद की हुई थी। मानव शरीर उनके लिए अखाड़े के लिए खोदी जाने वाली जमीन जैसा हो जाता। पहले तो फावड़े चलाकर खोदा जाता। फिर मिट्टी को भुरभुरा कर दो। अपने मातहतों को भी वे ऐसे ही आदेश दिया करते थे। 'घुसेड़ दे साले के पिछवाड़े में। साले, बिना छीला हुआ बाँस जब अंदर जाएगा तब मुँह खुलेगा।'

पूरे मुट्ठीगंज में दारोगा जी का खौफ था। सब लोग उन्हें डंडा गुरु कहते थे। खुद दारोगा जी को भी अपना यह नाम बहुत पसंद था। शान से बताते कि उनके खौफ से लोगों ने उनके कैसे-कैसे नामकरण कर रखे हैं।

उस दिन उन्होंने अपने इसी रौद्र रूप का दर्शन भुल्ली को कराया। सिपाही भुल्ली को लेकर आया तो वह चुपचाप एक कोने में बैठ गया। दारोगा जी के बुलाने पर भी जब वह नहीं आया तो दारोगा जी ने बिजली के मोटे तारों का हंटर उठा लिया। कुछ ही देर में हंटर की लकीरें बच्चे के शरीर पर उभरने लगीं। भुल्ली बिलबिला कर रोने लगा। चिल्ला-चिल्ला कर रोने लगा। दारोगा जी उससे भी ऊँची आवाज करके दहाड़े, 'चोप्प, स्साले। मादर...। अगर मुँह से आवाज निकली तो यहीं खोद कर गाड़ दूँगा। साले मुझसे नाटक।' बिलबिलाते हुए मार खाते हुए भुल्ली ने आवाज नीची नहीं की। वो जोर-जोर से चिल्लाता रहा मार खाते हुए उसके मुँह से भी दारोगा जी के लिए कुछ-कुछ निकलने लगा। 'साला मारत है। हमका मारत है। मारे डारत है।' दारोगा जी आपा खो बैठे। हंटर के सोंटे और कस-कस कर भुल्ली के शरीर पर पड़ने लगे।

भुल्ली बेहोश होकर नीचे गिर गया। लेकिन दारोगा जी को चैन नहीं मिला। 'नीच है स्साला। नाटक कर रहा है। उठ हरामी साले। चोर, साले।' नीचे गिरे हुए भुल्ली को जूते की नोंक से टहोका दे-देकर वे उठाने लगे। अवध नारायण की मार खाते हुए कई बार

चोर-बदमाश बेहोशी का नाटक करने लगते। कुछ तो ऐसी हरकतें करते जैसी मिरगी का दौरा पड़ गया हो। ऐसा नाटक करने वालों को औकात दिखाने के लिए दारोगा जी बिजली के झटके दिया करते थे। एक बार बिजली के तार छुआया नहीं कि बदमाश सौ की रफ्तार से भागता फिरेगा।

भुल्ली को नहीं उठता देखकर उन्होंने बिजली के प्लग में दो तार लगा दिए। दोनों हाथों में एक-एक तार उन्होंने पकड़ लिया। तार का सिरा खुला हुआ था। दारोगा जी का यह बहुत आजमाया हुआ तरीका था। एक बार छुआने के बाद बड़े से बड़ा डकैत और खूनी भी हामी भरने लगता था। अपना वही आजमाया हुआ तरीका उन्होंने भुल्ली पर भी लगाया। भुल्ली के दोनों पैरों पर उन्होंने हल्के से खुले हुए तार का सिरा छुआ दिया। भुल्ली का पूरा शरीर बिजली के झटके से बेतरह काँप उठा। लेकिन, दारोगा जी को संतोष नहीं हुआ। उन्होंने फिर से बिजली का तार उसके पैरों में छुआ दिया। बच्चे का पूरा शरीर एक बार फिर झटके से काँपने लगा। फिर ठंडा पड़ गया। करंट ने उसकी जान ले ली। अब दारोगा जी के हाथ-पाँव ठंडे पड़ गए।

किसी तरह मामला रफा-दफा किया। खुबई को खबर देने के साथ ही भुल्ली का क्रियाकर्म भी कर दिया गया। आखिरी बार भुल्ली को देख भी नहीं पाए खुबई।

शाम के समय काम निपटाकर पतंग उड़ा रहा था भुल्ली। उसी समय पता नहीं कैसे बिजली के तार में पतंग फँस गई। पतंग निकालने के लिए उसने डोर खींची तो डोर ही टूट गई। अब पतंग निकालने के लिए उसने बाँस की खपच्ची से बिजली के तार को नीचे करना शुरू किया। लेकिन, पूरा तार ही टूट कर उसके ऊपर आ गिरा। तार टूटने की आवाज सुनकर हम लोग छत की तरफ दौड़े। लेकिन, तब तक बिजली ने उसकी जान ले ली। पता नहीं तार में फँसी पतंग के पीछे क्यों पड़ा। एक बार कहता तो दूसरी पतंग लाकर दे देता। कुछ इसी से मिलते-जुलते शब्दों से दारोगा जी ने भुल्ली की मौत की कहानी खुबई को बताई। खुबई को इस कहानी पर बिलकुल भी भरोसा नहीं था। पर खुबई क्या करते। स्टॉफ क्वार्टर का एक-एक आदमी बिना पूछे भी यह बताने में जुटा हुआ था कि जब तार टूटने की आवाज सुनकर वो छत पर पहुँचा तो कैसे बिजली के तार ने साँप की तरह भुल्ली को पूरा लपेट लिया हुआ था। कैसे उसमें फँसा हुआ भुल्ली झटके ले-ले कर काँप रहा था। हालाँकि, बयानों में थोड़ा विरोधाभास भी था। एक कांस्टेबल का कहना था कि जब वो ऊपर पहुँचा तब तक भुल्ली के शरीर में जान नहीं बची थी। पता नहीं दारोगा जी ने पूरी कहानी खुद गढ़ी थी या फिर कहानी के कुछ हिस्से उन्होंने गढ़े थे और कुछ हिस्सों को विश्वास लायक बनाने के लिए दूसरों के भरोसे का सहारा लिया था। लेकिन, थोड़े-बहुत हेर-फेर के साथ कहानी सबके पास

इससे मिलती-जुलती ही थी। कई सारी असल बातों की तरह यहाँ भी असल बात जमीन में दफन हो गई और उसकी जगह पर नकल खड़ी अपने-आप पर इतरा रही थी। सच पर झूठ की कई-कई परतें जमा हो गईं।

रामजोर को नौकरी दिलाने में खुबई ने अपने दो बेटे खो दिए। भुल्ली की मौत के बाद लाला रामनिवास ने फिर पैसे के लिए जोर नहीं दिया। बेगारी करने के लिए भी किसी को भेजने की माँग नहीं की। कुछ लोग कहते हैं कि दारोगा जी ने लाला रामनिवास के नुकसान की भरपाई कर दी थी।

पहले तो खुबई ने काम करने रामजोर को इसलिए नहीं भेजा क्योंकि लगता था कि क्या पता कब नौकरी के लिए बुलावा आ जाए। पर बुलावा नहीं आया। छोटे भाई की मौत के सदमे से रामजोर सुध-बुध खो बैठे। वो दिन भर कभी गढ़ई के किनारे गुम-सुम बैठे रहते तो कभी गाँव से बाहर जाकर किसी पेड़ नीचे खेत चरते जानवरों को देखा करते। धीरे-धीरे उनकी नौकरी की उम्मीद खतम हो गई। रामजोर की पत्नी पत्ती लोगों के घरों में छोटा-मोटा काम करने लगी। पर उसके निचले होंठों के किनारे पर गाँठ बन गई। शहर में डॉक्टर को दिखाने गए तो वहाँ पर ऑपरेशन कराना पड़ा। उसके निचले होंठ का काफी हिस्सा काट दिया गया। अपने कटे हुए होठों वाले चेहरे को घूँघट में छुपाकर वह काम करती। लेकिन गाँठ फिर उभर आई। पत्ती की जान नहीं बच सकी।

रामजोर की माँ यानी खुबई की पत्नी तो पहले ही गुजर चुकी थी। अब घर में रामजोर और खुबई ही रह गए। खुबई अपनी इस दुरावस्था का जिम्मेदार बालमुकुंद और उनको दिए 15 हजार रुपयों को मानते थे। इसीलिए हर सुबह उसी नीम के पेड़ के नीचे आकर अपना रोना कोसना शुरू कर देते।

खुबई ने जैसे एक बार फिर जोर से हुंकारा लिया। उसकी आवाज तेज हो गई। लेकिन इसमें रुदन और चीख के सुर ज्यादा थे।

हे गंगा माई

भूसी और भुल्ली रहेन हमार दुई अँखियाँ

अपने हाथन से ओट कर-करके पाले रहे

घर के दुआरे पर खेलत रहेन हमार बेटवन

जेकरे कारण हमार दुइनौ अँखियन फूट गईं,

उनके भी आँख बंद होइ जाय

हे गंगा माई, जेनके वजह से हमार कुल डूबा

उनके आदमिन का तुमहू बोरेओ

जेकरे कारण हमार परवाह तबाह हुआ

ओकर भी परवार पर नाश टूटै

जेकरे चलते हमार पत्नी बिटिया के मुँह कटा

ओकरे भी शरीर के कण-कण से खून गिरै

जौन हमार पैसा लै के भाग गया

ओकरे सपनेओ में भी सुख नसीब न हो

मुकुट ने अपनी डूबती आँखों से एक बार फिर खुबई को देखा। नजरें उनकी धुँधली पड़ने लगी थीं। अपनी बंद होती पलकों की झुर्रियों से उन्हें नीम की जड़ में बैठे हुए खुबई दिखाई पड़े। जमीन पर उकड़ू बैठे खुबई के हाथ में एक लाठी थी। जिनसे उन्होंने हल्के से टेक लिया हुआ था।

चापाकल पर अम्मा का हाथ तेजी-तेजी ऊपर नीचे होने लगा। चापाकल से निकलने वाली पानी की धार तेज हो गई। इसके साथ ही उनकी भुनभुनाहट भी तेज हो गई। 'सुबह होती नहीं कि मुँहझौंसा चला आता है। खाय के ठिकान नहीं है। लेकिन हर दिन सुबह होती नहीं कि यहीं पर दिखाई पड़ता है। मुँह में दाँत नहीं, आँख से दिखाई नहीं पड़ता। पर मौत नहीं आवत। काला कौव्वा खाय के पैदा हुआ है दहिजरा।'

'पूरे गाँव में सबसे बड़ी कोठी खड़ी है। तबौ सबर नै न ई हरामी के। तीन-तीन बहुएँ सरकारी नौकरी कर रही हैं। कौनो कमी नहीं है। तबौ हर रोज यहीं आ जाता है मरने। अपने घर में ही क्यों नहीं इसको मौत आती।' अम्मा तेज आवाज में बड़बड़ाने लगती।

खुबई के छोटे भाई दबर की कहानी एकदम अलग तरह से चली। दबर भी गाँव में अरहर के रैंठे से झउआ बनाने का काम करते थे। गाँव के इस टोले में बच्चे फसल नहीं बल्कि खरपतवार की तरह उगते थे। उनके नाम भी खरपतवार की तरह ही थे। टोले के

ही च्यूंटारी ने पूरे गाँव का अलिखित कानून तोड़ दिया। उन्होंने अपने दो बच्चों का नाम अनिल और सुनील रख दिया। इससे पहले बच्चों के नाम लेड़ी, भोंदू, बउकल, कलुआ, भूरा, भूसी, भुल्ली, ढेला जैसा ही रखा जाता। एक दिन अपने घर के आगे खड़े च्यूंटारी अपने दोनों लड़कों को आवाज लगा रहे थे। ऐ अनील, ऐ सुनील। सुनिलवा। कहाँ हौ।

बभमान टोले में अब इससे ज्यादा बेइज्जती कोई नहीं सह पाया। बभमान टोले में उस समय लगभग सभी घरों में कोई सुनील, अनिल, सुधीर, सुशील और दिनेश था। जब च्यूंटारी अपने घर पर खड़े होकर अनिलवा और सुनिलवा करते थे तो बभमान टोले में सुनील और अनिल के बापों के तन-बदन में आग लग जाती। इसी बात पर एक दिन गाँव में मार हो गई। च्यूंटारी को जब बभमान टोले के लोगों ने पीटना शुरू किया तो चमरौटी से भी बहुत सारे लोग जमा हो गए। पहले तो बीच-बचाव होता रहा। बाद में दोनों तरफ से मारपीट होने लगी। खबर मिली तो पुलिस भी आ गई। झगड़ा शांत हो गया। लेकिन बभनान टोले को उस दिन टोले के घरों की मिट्टी की दीवारों पर पोते हुए नीले हाथियों का अर्थ समझ आया। धीरे-धीरे कई दीवारों पर अपनी सूँड़ नीचे झुकाए ये नीले हाथी उभर आए थे। दारोगा जी अपने आदमी थे। उन्होंने गाँव वालों को किनारे ले जाकर समझाया। हरिजन एक्ट लग जाएगा। सीधे जेल होगी। मानवाधिकार कमीशन भी बैठा है। जमाना अब पहले जैसा नहीं रहा।

बभनान टोले में भी बहुतों को बात समझ में आई। खैर अब कोई अपने बेटे का नाम कुछ भी रख ले, कोई कान नहीं देता। तभी तो जहाँ देखों चमरौटी से भी कुसुम, ममता, सुमन और शिवानी की पुकार होती दिखती। पहले इन नामों वाली लड़कियाँ बभनान और ठकुरान में ही दिखाई पड़ती थी।

खैर, नामों को लेकर शुरू हुए इस झगड़े में खुबई के भाई दबर भी कूद पड़े थे। कई लोगों का यह भी कहना है कि चमरौटी की तरफ से पहली लाठी भी उन्होंने ही चलाई थी। गाँव में इस तरह की अफवाहें चलने लगीं कि बभनान और ठकुरान के लोग ताक में हैं। किसी दिन खेत की मेड़ पर खून गिरा मिलेगा। इन तमाम अफवाहों और कानाफूसियों के बीच दबर घर छोड़कर जौनपुर बाजार चले गए। यहाँ पर उन्होंने कुर्सी-मेज और तखत बनाने का काम शुरू किया। सड़क के किनारे एक छोटी सी कुटिया में उनकी फर्नीचर की दुकान चलती। उसी में एक तरफ खाना भी बन जाता था। शुरू में तो कुर्सियाँ और मेज काफी अनगढ़ से बनते। पाए भी ऊँचे-नीचे हो जाते। लेकिन, फिर उनके काम में सफाई आती गई। दबर के तीन बच्चे थे। अपने बच्चों और

पत्नी को भी उसने पास ही बुला लिया। तीनों का नाम उन्होंने सरकारी स्कूल में लिखा दिया। पढ़ने के साथ ही लड़कों ने दुकान पर फर्नीचर बनाना भी सीखा।

दुकान खासी चलने लगी। लड़कों ने पढ़ाई के साथ-साथ हाथ का काम भी सीखा। बड़ा लड़का तो किसी बैंक में चपरासी हो गया। मझला वाला स्कूल में टीचर हुआ। सबसे छोटा वाला उनके साथ ही दुकान सँभालता है। इन लड़कों की शादियाँ भी दबर ने पढ़े-लिखे परिवारों में किया। उसकी तीनों बहुएँ सरकारी स्कूल में टीचर थीं। दबर ने जौनपुर में घर बनवाया था। फिर गाँव में बड़ा सा घर बनवाया। पक्का मकान। इसमें खपरैल की जरूरत नहीं थी। उसके आगे एक बड़ा सा चबूतरा बनवाया। इसके ऊपर बाबा साहेब खड़े थे। एक हाथ में संविधान की किताब पकड़े और दूसरे से अपनी उँगली से आगे बढ़ने के लिए इशारा करते। टोले के लोग यहाँ पर रोज सुबह जल चढ़ाने और अंबेदकर जयंती पर फूल-माला चढ़ाने आते। आस-पास के गाँवों के लोगों का एक छोटा-मोटा सा मेला भी यहाँ लग जाता। दबर की कोठी यहीं नहीं, आस-पास के भी गाँवों के ठकुरान और बभनान की आँखों में किरकिरी की तरह चुभती थी।

अम्मा भी अपनी भुनभुनाहट में दबर और खुबई का फर्क भूल जाती। दबर की कोठी और उसके बेटे और बहुओं की सरकारी नौकरी उसे खुबई की लुटी हुई पूँजी से हजार गुना ज्यादा की लगती। खुबई के तेज कोसने की आवाज सुनकर कपिल भी घर से बाहर निकल आए। खुबई की आवाज में छुपी मनहूसियत से उसका खून खौलने लगा। पहले तो उसे लगा कि इसी समय खुबई को उठाकर दूसरी तरफ पटक आएँ। पहले वो एक बार खुबई को घर के बाहर से धकियाते हुए गढ़ई तक छोड़ भी आए थे। पर खुबई की आदत में सुधार नहीं हुआ। वो अगले रोज फिर आ गया। लोगों ने भी कपिल को समझाया कि मर-मुरा गया तो लेने के देने पड़ जाएँगे। इसलिए दाँत पीसते हुए भी कपिल आगे नहीं बढ़े। कपिल निजी कंपनी में सिक्यूरिटी गार्ड की नौकरी करते थे। अपनी घड़ी में उन्होंने समय देखा। नौ बजकर पंद्रह मिनट हो रहे थे। कस्बे में स्थित बैंक की एक ब्रांच में उनकी ड्यूटी लगी हुई थी। समय हो रहा था। उन्होंने साइकिल की सीट के नीचे फँसाया हुआ कपड़ा निकाला और उससे पूरी साइकिल को पोंछने लगे। साइकिल के हैंडल पर एक झोला लटका हुआ था। इसमें उनका टिफिन था। एक और झोला कैरियर पर उन्होंने लगाया। इसमें उनकी वर्दी थी। इसे बैंक में जाकर उन्हें पहनना था। साइकिल को जल्दी-जल्दी पोंछते हुए भी कपिल के कान खुबई की आवाज पर लगी हुई थी।

इधर, अपनी भुनभुनाहट के सुरों को और तेज करती हुई अम्मा ने पूरे बरामदे में झाड़ू लगाने की तैयारी शुरू की। कोई और दिन होता तो वह पहले बरामदे में पानी छिड़कती

ताकि झाड़ू लगाते समय धूल कम से कम उड़े। लेकिन, अपने गुस्से में उसने खजूर के पत्तों से बनी हुई बड़ी सी झाड़ू उठाई और पूरा बारामदा बुहारना शुरू कर दिया। दुआरे पर अपनी कोख में मुँह दबाए कुतिया की तरह बैठी हुई धूल चिंहुक कर उठ पड़ी। चारों तरफ धूल का एक मोटा कोहरा सा बनने लगा। अम्मा ने अपने आँचल को आगे करते हुए अपने मुँह और नाक पर बाँध लिया। धोती के किनारे से आँख पर एक छोटी सी झिर्री बनी हुई थी। उसी से अपना लक्ष्य निर्धारित करते हुए उन्होंने धूल को एक किनारे लगाना शुरू किया। खुबई के ऊपर अचानक ही जैसे धूल भरी आँधी आने लगी।

अपने सुर को ऊँचा उठा-उठा कर रुदन कर रहे खुबई के मुँह और नाक में ढेर सारी धूल भर गई। उनके फेफड़ों में भी धूल का बसेरा होने लगा। उनके गाने में खाँसी की आवाज भरने लगी। तेज-तेज रोते-रोते हुए उन्होंने अपना कोसना और तेज कर दिया।

गंगा मइया, इनके घरवा पर पड़ जाय धूल हो

इनके खेतवा में बईठ जाय धूल हो।

घमंडवा तो नै रहा रावण के भी

इनकर भी घमंडवा को करो चूर हो।

लेकिन, बूढ़े की काँपती गर्दन और ऊँचे सुर में उठी हुई चीखती हुई आवाज भी इस धूल का मुकाबला नहीं कर सकी। उन्हें खाँसी का तेज दौरा पड़ने लगा। कुछ देर तक उनके और अम्मा के बीच यह प्रतियोगिता सी चलती रही। वो अपनी आवाज को और तेज करके कोसने का सुर निकालते। लेकिन अम्मा अपने हाथों को तेजी-तेजी से उड़ाते हुए धूल के बवंडर पर बवंडर बनाती। इस धूल से खुबई की आँखें भी बंद होने लगी। अपनी लाठी का सहारा लेते हुए वो उठे।

हमार अँखिया बंद होइ जाइ,

लेकिन तुम आपन अँखिया बंद न करिहौ, हो राम

कुछ इसी तरह का श्राप, रुदन, कोसना और चीख का मिला-जुला आलाप करते हुए खुबई वहाँ से उठ कर चलने लगे। गढ़ई के पास से उनके लाठी टेक-टेक कर गुजरने की आवाज आती रही। अपनी खाट पर लेटे हुए मुकुट ने धूल से बचने के लिए अपने मुँह को कमीज के ऊपर के दो बटन खोलकर उसमें छुपा लिया था। इसी में से वो कुछ-कुछ आभास लेने की कोशिश कर रहे थे। खुबई की आवाज उन्हें दूर जाते हुए

सुनाई पड़ रही थी। धूल का बवंडर कुछ-कुछ बैठता हुआ दिख रहा था। अम्मा के हाथों के तेज-तेज चलने की आवाज भी बंद हो गई थी। अपनी कमीज में से उन्होंने मुँह निकाला। अम्मा एक किनारे खड़ी-खड़ी हाँफ रही थी। उसके एक हाथ में झाड़ू अभी थी, लेकिन झाड़ू का सिरा जमीन पर टिका हुआ था। जैसे काम खतम करने के बाद उसे रखने की तैयारी कर रही हो। अम्मा की धोती भी धूल से और ज्यादा पीली हो चुकी थी। या फिर मटमैली।

'